IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

कालिदास की शाकुन्तलम्: भारतीय साहित्य का एक अमूल्य कृति

बबिता आर्य
परध्यापक
सी सी ए एस जैन गर्ल कॉलेज, गनौर
सोनीपत

न तत ज्ञानम् न तच्छिल्प न सा विधा न सा कला
न स योगो न तत कर्म नाट्येस्मिन् यन्न दृश्यते।।(1)

- नाट्यशास्त्र

सारांश:

यह लेख खोजता है और चर्चा करता है की प्राचीन भारतीय कवि और नाटककार कालिदास द्वारा लिखी गई प्रसिद्ध नाटक "शाकुन्तलम्" की महत्ता और प्रभाव। यह शाकुंतलम् के प्लॉट, पात्र, विषय और साहित्यिक तत्वों की समझ को विस्तारपूर्वक प्रस्तुत करता है। लेख कालिदास के बारे में और उनके संस्कृत साहित्य में किए गए योगदानों के बारे में भी चर्चा करता है। शाकुंतलम् प्यार, विच्छेद और पुनर्मिलन की मोहक कहानी है। यह शकुंतला की कथा का अनुसरण करती है, जो सेज कन्व मुनि के आश्रम में पली-बढ़ी हुई युवती है, वह राजा दुष्यंत से प्यार करती हैं। हालांकि, एक श्राप के कारण, उनका प्यार छोटे समय तक ही बाध्य रहता है और दुष्यंत शकुंतला को भूल जाते हैं। नाटक खूबसूरती से दिखाता है की शकुंतला के विषम परिस्थितियों में वह उनके पूर्व में के प्यार की ताकत से प्यार करती हैं। अंततः, किस्मत उन्हें मिलती है और वे एक दूसरे के आग्रह में आराम पा लेते हैं। लेख कालिदास की कला प्रतिभा को जोशीले लेखन और चैतन्यदायक छवि की वीभत्सता को भी उजागर करता है। इसमें मनुष्यी भावनाओं का अन्वेषण, प्यार की जटिलताओं, दायित्व और किस्मत के विचार को विचार किया जाता है। इसके अलावा, यह प्रतीकात्मकता का इस्तेमाल और कहानी की गहराई और सुंदरता में प्रकृति की भूमिका का महत्त्व भी विचार किया जाता है। शाकुंतलम् की कायम लोकप्रियता और सांस्कृतिक महत्त्व भी विचार किए जाते हैं। यह नाटक प्राचीन भारतीय समाज के मूल्यों, रीति-रिवाजों और सांस्कृतिक महत्त्व का प्रतिबिम्ब करता है। इसने भारत और उत्तरी अमेरिका में विभिन्न कला-रूपों में अनुकरण, अनुवाद और प्रदर्शनों का प्रेरणा दिया है। समापन के रूप में, यह लेख कालिदास की शाकुंतलम् की दीर्घायु की प्रेरकता और कला प्रशस्तता को स्थापित करता है। यह शोधकर्ताओं, साहित्य प्रेमियों और उन लोगों के लिए एक मूल्यवान स्रोत है जो भारतीय प्राचीन साहित्य की अमापता को समझने और प्रशंसा करने में रुचि रखते हैं।

पहला श्लोक भरत मुनि रचित नाट्य शास्त्र से लिया गया है एवं द्वितीय एवं तृतीय श्लोक मार्कण्डेय ऋषि द्वारा रचित विष्णुधर्मोत्तर पुराण से लिए गए है। नाट्य शास्त्र का श्लोक कहता है कि विश्व में ऐसा कोई ज्ञान, शिल्प, विधा, कला, योग या कर्म नहीं है जिसका दर्शन नाट्य में न होता हो। वहीं विष्णुधर्मोत्तर पुराण के तृतीय खण्ड मेंवर्णित चित्र सूत्र के श्लोक कहते हैं कि चित्रसूत्र को भलीभाँति समझने के लिए पूर्व वर्णित नृत्यशास्त्र का अध्ययन कर लेना चाहिए क्योंकि नृत्य एवं चित्र दोनों के विषय समान है दोनों दृश्य कलाऐं है और भावाभिव्यक्ति अंग प्रत्यंग की भंगिमाओं एवं मुद्राओं में कई प्रकार से साम्य है। जिस प्रकार नृत्य के लिए हस्त मुद्राएँ बतायी गयी हैं वैसे ही चित्र के लिए भी अपेक्षित है।

इसी प्रकार अरस्तू कहते हैं, ''कविता का मूल 'संगीत'भी है, इसलिए संगीत आनन्द की अनुभूति का सहजोद्रेक है। उसकी प्रकृति भावात्मक है। उसमें भाव स्पर्श करने की क्षमता है।(2)

देकार्त कहते है, ''राग में सन्निहित वे संवेदनाऐं ही आनन्द देती है जो न तो अधिक तीक्ष्ण हो, न ही अधिक मन्द हो। यही तथ्य कला पर भी चरितार्थ होता है क्योंकि सभी कलाएं हमारी संवेदनाओं को जगाती है।(3)

उपरोक्त सभी कथन कलाओं के अन्तर्सबंध की अभिव्यंजना करते हैं। हम जानते हैं कि कलाऐं एक दूसरे की पूरक भी है और प्रेरक भी। आदिकाल से ही कलाऐं एक दूसरे को पोषित करती आई हैं। समस्त ललित कलाओं का एक तात्विक अंतःसंबंध होता है जो उन्हें परस्पर निकटता प्रदान करता है। कलाओं की उत्कृष्टता एवं प्रभाव की दृष्टि से आकलन करने पर इस अन्तःसंबंध की उपयोगिता अत्यन्त महत्वपूर्ण दृष्टिगत होती है। एक ओर चित्रकला, संगीत कला एवं काव्य कला के तात्विक संबंध अधिक घनिष्ठ है और मूर्तिकला व वास्तुकला का संबंध विशुद्ध चाक्षुष है।(4)

सर्वविदित है कि शैली, प्रेषणीयता के माध्यम, रूपाकार आदि की दृष्टि से कलाऐं परस्पर भिन्न है किन्तु तात्विक दृष्टि से समस्त कलाओं में एक विलक्षण साम्य है। सौन्दर्य कल्पना, बिंब, प्रतीक सम्प्रेषणीयता, रूप विधान आदि तत्व काव्य, संगीत, चित्र, मूर्ति और वास्तुकला में समान रूप से मिलते हैं तथापि इन तत्वों का संयोजन समरूप नहीं होता। जहां एक चित्रकार रंग एवं रेखाओं के माध्यम से अमूर्त को रूप प्रदान करता है वहीं काव्य में शब्दों के सहारे विचारों एवं भावों को प्रतीकात्मक रूप से अभिव्यक्त किया जाता है। इतिहास साक्षी है कि युगो-युगान्तर से विभिन्न कलाऐं एक दूसरे को प्रेरित करती रही है एवं कला सृजन के विषय उपलब्ध कराती रही है। रागमाला पर आधारित चित्र हो या चित्रों पर आधारित साहित्य रचना हो।

अलग-अलग समय में कला आन्दोलनों का चित्रकला पर गहरा प्रभाव पड़ा है उस प्रक्रिया से रंगमंच भी अछूता नहीं रहा है। नेचुरलिज्म, रियलिज्म, रोमांटिसिज्म, इम्प्रेसिज्म, क्यूबिज्म, इन्स्टालेशन, जैसे अलग-अलग क्षेत्रों से दोनों ही माध्यम गुजर रहे हैं। सिर्फ मंच के भौतिक आकार-प्रकार में नहीं वरन् नाट्य लेखन, अभिनय और प्रस्तुतिकरण में भी सारे वाद और प्रभाव बहुत अच्छी तरह से विवेचित और विश्लेषित किये जा सकते हैं।

स्पष्ट है कि नाट्य साहित्य एवं चित्रकला में भी विशेष संबंध रहा है। विशेषकर संस्कृत साहित्य ने चित्रकला के रचना संसार को अथाह विषय उपलब्ध कराऐ हैं। भारतीय मनीषियों ने नाटक को दृश्य काव्य की संज्ञा दी है भरत मुनि ने नाट्य का प्रयोजन रस-निष्पत्ति माना है। चित्रसुत्र भी चित्र कला में रस स्थिति को स्वीकार करता है किंतु प्रश्न उठता है कि क्या चित्रकला में भी उसी प्रकार की रस-निष्पत्ति संभव है जिस प्रकार की नाट्य-प्रयोग में होती है?

इस तथ्य का परिक्षण करने के लिए संस्कृत नाट्य साहित्य से उपयुक्त क्या विषय हो सकता है। संस्कृत नाट्य साहित्य में कालिदास निर्विवादित रूप से सर्वश्रेष्ठ नाटककार माने जाते हैं। कालिदास की नाट्य रचनाओं में भी निर्विवाद रूप से शाकुन्तलम् को सर्वश्रेष्ठ रचना माना जाता है। इसलिए कहा भी गया है ''कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञान शाकुन्तलम्' कालिदास की इस रचना से प्रभावित हो जर्मन कवि गेटे कहते हैं,'' बसन्त ऋतु के समस्त पुष्प और फल तथा ग्रीष्म काल के भी तमाम फल पुष्प और जो कुछ भी मन को रसायन की तरह सन्तुष्ट और मोहन करने वाला है तथा स्वर्ग लोक और भूलोक दोनों के अभूतपूर्व एकत्रित ऐश्वर्य को हे प्रिय मित्र। यदि तुम देखना चाहते हो तो ''शकुन्तला '' का सेवन करो।(5)

कालिदास की अनुपम नाट्य रचना "अभिज्ञानशाकुंतलम् " प्राचीन काल से चित्रकारों एवं शिल्पकारों को प्रेरित करती रही है। शुंग काल के भित्ति चित्रों एवं उड़ीसा की गुफाओं में इसके कुछ साक्ष्य मिलते हैं। आधुनिक भारतीय चित्रकला के जनक कहे जाने वाले राजा रवि वर्मा ने भी इस नाटक को अपनी चित्र रचना का विषय बनाया है वहीं अवनीन्द्रनाथ टैगोर से लेकर आधुनिक कलाकारों तक यह नाटक चित्रकारों को प्रेरित करता रहा है। अध्ययन में हमने कुछ चयनित चित्रों को अपने अध्ययन का विषय बनाया है जिसमें राजा रवि वर्मा की कृतियाँ - शकुन्तला का पत्र लेखन, रामगोपा विजयवर्गीय की दुष्यन्त शकुन्तला, सूर्यकान्त त्रिवेदी-विदाई, डॉ. नाथूलाल वर्मा का शकुन्तला की विदाई, ओम प्रकाश सुजानपुरी का प्रणय-वीक्षण एवं बृज मोहन कुमावत के चित्र शामिल हैं।

हम इन चित्रों के रस सिद्धांतमय विश्लेषण की ओर अग्रसर हो तेा सबसे पहले हमें विषय की ओर दृष्टिपात करना हेागा। संस्कृत नाटकों के नियमों के अनुरूप अभिज्ञानशाकुंतलम् रूपक के नाटक भेद की श्रेणी में आता है जिसका प्रमुख रस शृंगार या वीर होता है। हम कथावस्तु से विदित है और निश्चिम तौर पर कह सकते है कि नाटक में प्रमुख रस शृंगार है और अधिकतर विषय जो चित्रांकित किये गये है उनका विषय भी शृंगार रस ही है। कुछ चित्रों में करूण रस' को भी विषय बना कर चित्रित करने का प्रयास किया गया है। शृंगार रस के भी दो भेद पाए जाते है संयोग शृंगार एवं विप्रलम्भ शृंगार।16 चित्रकारों ने दोनो प्रकार के शृंगार को अपनी विषय वस्तु बनाया है।

नाट्य शास्त्र के अनुसार शृंगार का वर्ण श्याम माना गया है एवं इसका अभिनय नयन चातुर्य, भू-विक्षेप, कटाक्ष संचार, मधुर एवं ललित अंगो के संचालन एवं मधुर शब्द द्वारा करना बताया गया है। इसी प्रकार दृष्टि भेद में कान्ता दृष्टि को श्रंगार रसायुक्त बताया गया है। पुतली कर्म में विवर्तन अर्थात कटाक्ष पूर्ण देखना को शृंगार रस के उपयुक्त बताया है। कुछ विद्वानों का यह भी मानना है कि अद्भुत, हास्य और वीर रस इसमें संचारी या सहायक भाव बन जाते है। एवं इनके रंग, क्रमशः पीला, सफेद और चमकीला सफेद बताए गए है। (6)

उपर्युक्त वर्णन के अन्तर्गत हम विभिन्न चित्रों का विवेचन करते है।

राजा रवि वर्मा ने संस्कृत साहित्य पर कई और विशेषकर शाकुन्तलम् पर कई चित्र बनाऐं जिनमें से सबसे प्रसिद्ध "शकुन्तला का पत्र लेखन है जिसमें प्यार में डूबी शकुन्तला पेट के बल लेटे हुए अपनी अंगुली के नाखून से कमल के पत्ते पर अपने प्रेमी को पत्र लिख रही है और उसके पास दोनों सखियाँ अनसूया और प्रियंवदा है। चित्र के पृष्ठ भाग में हिरन एवं वृक्षों का चित्रण वातावरण निर्माण में सहायक सिद्ध हो रहा है। इस चित्र में तृतीय अंक के दृश्य को चित्र का विषय बनाया गया है।

राजा: न अये, लब्धं नेत्रनिर्वाणम्। ऐषा में मनोरथप्रियतमा सकुसुमास्तरणं, शिलापट्टधिशयना सखीभ्यामन्वास्यते। भवतु, श्रोष्याम्यासां विश्रम्भकथितानि। (7)

राजा रवि वर्मा के इस चित्र में हरित, श्याम, पीत तथा श्वेत वर्ण का उपयोग दिखलाई पड़ता है जो नाट्य शास्त्रानुसार रसानुरूप ही है। शकुन्तला की दृष्टि स्नेहमयी तथा पुतली की दशा विवर्तित है। चित्र से स्पष्ट हो रहा है कि वह किसी के स्मरण में डूबी हुई है। प्रेम के प्रभाव से चेहरे में प्रसन्न मुखराग का जो वर्णन भरत मुनि ने किया है उसे चित्रकार ने वर्ण योजना से जीवन्त हो गया है। पार्श्व में चित्रित वृक्ष, हिरण व सखियाँ भी आश्रम के दृश्य को जीवंतता प्रदान कर रहे हैं।

इस कड़ी में दूसरा चित्र ओम प्रकाश सुजानपुरी का "प्रणय-वीक्षण" है। इस चित्र में प्रथम अंक की घटना का चित्रण है जब आश्रम में जल सिंचन कर रही शकुंततला को राजा छिपकर देख रहा है।

राजाः न भवतु; पादपान्तर्हित एव विस्त्रब्धं तावदेनां पश्यामि। (8)

चित्र में पृष्ठभूमि में आश्रय भी दृष्टिगत है। वृक्ष, वृक्ष पर बैठे पक्षियों, हिरण शावक आदि का चित्रण किया गया है। चित्र कांगड़ा शैली का है। इसमें गेरू पीत एवं हरित रंग की प्रधानता के साथ चटख रंगों का प्रयोग किया गया है।

एक और चित्र में दुष्यंत की भंगिमा उसकी प्रणयातुर अधीरता के प्रदर्शन में सहायक सिद्ध हो रही है। शकुंतला का एक पैर उठा है अर्थात वो पैर में काँटा चुभने का अभिनय कर दुष्यंत को देखना चाह रही है। उसकी अधीरता का रसानुकूल चित्रण किया गया है। दुष्यंत एवं शकुंतमला दोनों की पुतलियों की दशा विवर्तित अवस्था में चित्रित की गई है जो रसानुकूल है। चित्र की वर्ण योजना भी रस वृद्धि में सहायक है।

इसी प्रकार किशनगढ़ के बृज मोहन कुमावत ने अपने चित्र 'अपूर्ण अभिलाषा' में तृतीय अंक के इस संवाद को चित्र का विषय बनाया है।

राजाः अपरिक्षत कोमलस्य यावत्, कुसुमस्य नवस्य षट पदेन।

अधश्रसय पिपास्ता भयाते, सदयं सुंदरि! गृहाते रसोस्या।। (9)

दुष्यंत शकुन्तला का प्रेमवश आलिंगन एवं चुम्बन करना चाह रहे और शकुंतला ने लज्जावश अपना मुख फेर लिया है। चित्र के पृष्ठ भाग में पहाड़ों, वृक्ष, कुटिया एवं हिरण शावको का कुशल संयोजन किया गया है।

चित्र की विशेषता है कि स्थिर आंगिक भंगिमाओं से भी सम्पूर्ण घटनाक्रम दृष्टिगत हो रहा है। शकुंतला का सिर निहचित अवस्था में है पुतली नता अवस्था में, दृष्टि कान्ता है। दाहिने हस्त से पताका मुद्रा में वह दुष्यंत को चुम्बन से रोकती प्रतीत हो रही है। शकुंतला में कुट्टमिट्ट एवं बिम्बोक अलंकारों का सहज प्रदर्शन हो रहा है। दुष्यंत की दृष्टि एवं मुख मुद्राऐं भी रसानुकूल है एवं श्रृंगार में अभिवृद्धि कर रही है। चित्र की वर्ण योजना भी रसानुकूल है।

अभिज्ञान शाकुंतलम के चतुर्थ अंक में वर्णित "शकुन्तला की विदाई" के दृश्य को करूण रस का श्रेष्ठ उदाहरण स्वीकार किया जाता है। कालिदास ने मानवीय भावों का सृजन पशु-पक्षियों तथा लताओं-वनस्पति में इस प्रकार किया है कि वो जीवन्त प्रतीत होती है एवं मानव और प्रकृति संबंध का अप्रतिम उदाहरण बन जाती है। उज्जैन के सूर्यकान्त त्रिवेदी और जयपुर के डा. नाथूलाल वर्मा दोनों ने ही इस दृश्य को अपनी सृजनशीता का आधार बनाया है।

नाट्यशास्त्र में करूण रस का वर्ण कपोल (घटेरिया) माना गया है। (10) शिरोभेद में अंचित एवं अधोगत का उपयोग बताया है। दृष्टिभेद में करूणा एवं दीना को एवं पुतली कर्म में "पालन" को रसानुकूल निर्दिष्ट किया है।

ऐसे ही एक दूसरे चित्र में उपरोक्त वर्णन के अन्तर्गत सूर्यकान्त जी के चित्र में शकुंतला के आंगिक रूपायन में अधोगत शिरोभेद, दीना दृष्टि एवं दोला संयुक्त हस्त मुद्रा का प्रयोग किया गया है। जो करूण रस या विषाद की स्थिति प्रकट करने के अनुकूल है। ऋषि कण्व के मस्तक पर पड़ी लकीरें एवं उनकी दृष्टि भी रसानुकूल है। दोनों ऋषि कुमारों एवं सखियों की मुद्राऐं भावों को सघनता प्रदान कर रही हैं। शकुन्तला का दुपट्टा पकड़े मृग एवं उसके मुख के भाव रसानुभूति में सहायक सिद्ध हो रहे है। धूमिल वर्ण योजना रसानुभूति की तीव्रता में अभिवृद्धि कर रही है।

इस प्रकार इन चित्रकृतियों के विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते हैं कि लगभग सभी चित्रकृतियाँ भावों के प्रदर्शन में उसी सधनता, तीक्ष्णता एवं रसानुभूति को लिऐ हुए है जितनी कोई नाट्य प्रस्तुति होती है। विदित है कि नाट्य प्रदर्शन में पूर्ण घटना क्रम को प्रस्तुत किया जाता है और संवादों के माध्यम से भी भावाभिव्यक्ति संभव है किन्तु स्थिर चित्र में बिना गति एवं संवाद के समेकित रूप से सभी भाव, पूर्व घटना एवं क्रिया का प्रदर्शन निश्चय ही एक दुरूह कार्य है जिसे भारतीय चित्रकारों ने बड़ी ही कुशता एवं सरलता से पूर्ण किया है। इस संक्षिप्त अध्ययन के आधार पर हम कह सकते हैं कि चित्रकृतियों और रस-सिद्धांत में एक अव्यक्त एवं अव्याख्यातित संबंध है।

संदर्भ:

1. नाट्यशास्त्र, अध्याय 1, श्लोक संख्या 116
2. टिलमेन, ए फ्रोम्ड एण्ड स्टीवन, फिलॉसोफी ऑफ आर्ट एण्ड एस्थेटिक (फ्रॉम प्लेटो टू विटेंग्सटिन), हॉर्पर एण्ड रॉ पब्लिशर्स, न्यूयार्क, 1969, पृष्ठ 61
3. चतुर्वेदी, ममता, सौन्दर्यशास्त्र (पाश्चात्य एवं भारतीय), राजस्थान हिन्दी, ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 7वां संस्करण, 2012, पृ.सं. 58
4. चतुर्वेदी ममता, सौन्दर्यशास्त्र (पाश्चात्य एवं भारतीय परम्परा) राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 7वां संस्करण, 2012 पृ.सं. 11
5 मिश्र, विश्वनाथ, नाटक का रंग विधान, प्रथम संस्करण, कुसुम प्रकाशन, मुजफ्रनगर, 1994, पृष्ठ 35
6. हिन्दी नाट्यशास्त्र, भाग 1, अध्याय 6, चौखम्बा प्रकाशान, वाराणसी, पृष्ठ 369
7. अग्रवाल, श्याम बिहारी, भारतीय चित्रकला का इतिहास, रूपशिल्प प्रकाशन, इलाहबाद, 1996, पृष्ठ 171
8. मिराशी, वी.वी., कालिदास, मोतीलाल बनारसीदास, पटना, प्रथम संस्करण, 1938, पृष्ठ 3
9. मिश्र, विश्वनाथ, नाटक का रंग विधान, प्रथम संस्करण, कुसुम प्रकाशन, इलाहबाद 1996, पृष्ठ 240
10. हिन्दी नाट्यशास्त्र भाग1, अध्याय 6, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ 301-302